Introduction

भूमिका

जिस प्रकार स्रोतस्विनी अपनी प्रकृति व परिस्थिति के अनुरूप अपने प्रवाह को मोड़कर, उसे एक विशिष्टता और आकार प्रदान करती है, उसी प्रकार साहित्य-जगत के या कला-जगत के मनीषी कृती-कवि, लेखक या कलाकार की अपनी निजी एवं जागतिक अनुभूतियों की स्रोतस्विनी भी अपनी प्रकृति एवं माँग के अनुरूप एक विशिष्ट आकार ग्रहण कर लेती है। पुनरुत्थानोत्तर औद्योगिक क्रान्ति से विकसित पूंजीवादी व्यवस्थाने जीवन की जटिलता को अनेक गुना बढ़ा दिया, तब मानव-जीवन एवं समाज जीवन की जटिलता को उसके यथार्थ एवं समग्र रूप में सम्प्रेषित करने के लिए उपन्यास एक उचित संवाहक एवं सशक्त ~~लोकप्रिय~~ लोक-प्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। विगत कुछ दशकों से यह निरंतर विकसित एवं संवर्द्धित हो रहा है।

उपन्यास इस नये युग की नयी वास्तविकता एवं उसके अन्तर्विरोधों को रूपायित करने में अन्य काव्यरूपों की तुलना में विशेष सफल रहा है। उसका रूपबन्ध अत्यधिक परिवर्तनशील एवं लचीला होने के बावजूद उसमें उसके रचयिता का एक निश्चित ~~जन~~- जीवन-दर्शन परिव्याप्त रहता है, जो उसे एक साहित्यिक गरिमा प्रदान करता है। मणिधर साँप के लिए मणि का जो महत्व है कुछ वैसा ही महत्व व स्थान उच्च कोटि के औपन्यासिक में जीवन दर्शन का रहता है। उसकी रचनाधर्मिता में वास्तवदर्शी जीवनानुभवों का माहात्म्य उसे जीवन के अधिक सन्निकट स्थापित करता है। अपनी इन्हीं विशेषताओं से अल्पकाल में ही वह साहित्यकारों के मनोमस्तिष्क में रस-बस गया है और उन्नति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच रहा है।

इसके ठीक विपरीत हमारे सुधी आलोचकों की दृष्टि इस विधा की ओर बहुत कम गयी है क्योंकि वे उसे अपेक्षाकृत अगम्भीर, अप्रौढ़, बचकाना, स्त्रैण एवं आभिजात्यहीन अतः तिरस्करणीय समझते रहे हैं। जबकि इस क्षेत्र में वाल्टर स्काट, चार्ल्स डिकन्स, एमिली ब्रान्टी, थैकरे, जार्ज मैरिडिथ, आस्कर वाइल्ड, एच० जी० वेल्स, जोसेफ कानराड, रुडयार्ड किपलिंग, डी० एच० लारेन्स, समरसेट माम, जेम्स जायस, वर्जिनिया वुल्फ आदि अंग्रेजी उपन्यासकार ; बाल्जाक,

एलेक्जांडर ड्यूमा, गुस्ताव फ्लोबेर, विक्टर ह्यूगो, एमिल जोला, आन्द्रे जीद, रोम्यां रोलां मार्सेल प्रूस्त, आन्द्रे मालरो, ज्यांपाल सार्त्र, आल्बेर कामू प्रभृति फ्रेन्च उपन्यासकार ; पुश्किन, गोगोल, तुर्गनेव, टॉल्सटाय, चेकोव्ह, दोस्तोयवस्की, गोर्की, शोलोखोव इल्या एहरेनबर्ग, बोरिस पास्तरनाक, सोल्जेनित्सिन आदि रूसी उपन्यासकार और नथनियल हाथार्न, हेमिंग्वे, फाकनर, पर्ल बक, जान स्टेन बेक आदि अमरीकी उपन्यासकार हुए हैं जो विश्वविख्यात तत्व-चिन्तक एवं मनीषी साहित्यकार हैं। भारतीय साहित्य में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरदबाबू, ताराशंकर बन्दोपाध्याय (बंगला) ; प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अज्ञेय (हिन्दी) ; गोवर्द्धनराम त्रिपाठी, कन्हैयालाल मुंशी (गुजराती) ; हरिनारायण आप्टे, वि०स० खांडेकर (मराठी) आदि उपन्यासकारों के उपन्यास जीवन के गहनतम सत्यों को शाश्वत एवं साम्प्रतिक जैविक मूल्यों से सन्दर्भित करने में सफल हुए हैं। अस्तु, उपन्यास साहित्य की गम्भीरता, परिपक्वता एवं वरीयता निर्विवादित है। साहित्यिक 'आलिम्पिक' जैसे नोबेल पुरस्कार के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि कि अभी तक साहित्य के लिए वितरित सत्तर पुरस्कारों में से चौबीस पुरस्कार तो केवल उपन्यासकारों को दिये गये हैं।

उपन्यास मूलतः पश्चिम की देन है। वहां भी उसका उद्भव पुनरुत्थान काल के पश्चात् ही हुआ। जान बनियन कृत अंग्रेजी का प्रथम उपन्यास 'द पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' सोलह सौ अठहत्तर (१६७८) में, मादाम द लफायेत कृत फ्रेंच का प्रथम उपन्यास 'दि प्रिन्सेस आफ क्लेब्स' १६७८ में, ए रेडिश्चेव कृत रूसी उपन्यास 'जर्नी फ्राम पिट्सबर्ग टु मास्को' १७६० में, जैम्स फेनीमोर कूपर कृत प्रथम अमरीकी उपन्यास 'द पायोनियर्स' १८२३ में प्रकाशित हुआ। हमारे देश में औपन्यासिक रचनाओं का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से होता है। सर्व प्रथम टेकचन्द ठाकुर कृत बंगला उपन्यास 'आलालेर घरेर दुलाल' सन् १८५७ में प्राप्त होता है। उसी वर्ष बाबा पदमनजी कृत मराठी उपन्यास 'यमुना पर्यटन' मिलता है। इसके नौ वर्ष बाद नन्दशंकर तुलजाशंकर मेहता द्वारा लिखित 'करण घेलो' नामक गुजराती उपन्यास सन् १८६६ में प्रकाशित होता है। हिन्दी का प्रथम उपन्यास पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' सन् १८७७ में उपलब्ध होता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में 'भाग्यवती' से लेकर मीनाक्षी पुरी द्वारा लिखित 'जाने पहचाने अजनबी' (१९७७) तक के सौ वर्षों के उपन्यासों का सर्वेक्षण दिया जा रहा है। इसकी प्रासंगिकता के विषय में लेखक के लिए यह सुखद संयोग है कि इसे तब प्रस्तुत किया जा रहा है जब हिन्दी उपन्यास ने अपने सौ वर्षों की यात्रा तय कर ली है।

इससे पूर्व सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य को लेकर कुछ श्लाघनीय प्रयास हुए हैं, जैसे -- 'हिन्दी उपन्यास' (शिवनारायण श्रीवास्तव), 'हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास' (डॉ० प्रतापनारायण टण्डन), 'हिन्दी उपन्यास' (डॉ० सुषमा धवन), 'हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास' (डॉ० सुरेश सिन्हा), 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' (डॉ० त्रिभुवन सिंह), 'हिन्दी उपन्यास -- एक सर्वेक्षण' (डॉ० महेन्द्र चतुर्वेदी), 'हिन्दी उपन्यास -- एक अन्तर्यात्रा (डॉ० रामदरश मिश्र), 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' (डॉ० गणेशन)। किन्तु प्रत्येक अध्ययन की अपनी कुछ उपलब्धियां व साथ ही कुछ सीमाएं होती हैं। दीप से दीप जलता है। एक अध्ययन से दूसरे अध्ययन का पथ प्रशस्त होता है। अभिनव गुप्त ने साहित्यिक मीमांसा के सन्दर्भ में कहीं कहा है : 'न तु अपूर्व किंचित्'। यहां अपूर्व ऐसा कुछ नहीं होता तथापि साहित्य-मीमांसा के प्रश्न निरन्तर चर्चित होने चाहिए। विचार-विमर्श का स्थगन अबौद्धिकता का लक्षण ही नहीं प्रत्युत मानसिक दिवालियापन का सबूत भी है। प्रस्तुत अध्ययन अपनी पूर्व परम्परा को एक पग आगे बढ़ाने का नम्र प्रयत्न है।

पस्तुत अध्ययन का मुख्य प्रतिपाद्य हिन्दी उपन्यास साहित्य परम्परा के सन्दर्भ में साठोत्तरी उपन्यासों का मूल्यांकन है। अतः उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में पूर्ववर्ती समस्त उपन्यास परम्परा का आकलन एवं विश्लेषण अत्यन्त आवश्यक समझा गया है। संक्षेप में प्रस्तुत अध्ययन की यही सीमा है।

अध्ययन की सुविधा के लिए इसे तीन खण्डों में विभाजित किया गया है -- (१) खण्ड 'क' -- उपन्यास - स्वरूप विवेचन और विकास परम्परा (सन् १९६० तक की), (२) खण्ड 'ख' -- कुछ विशिष्ट साठोत्तरी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, (३) खण्ड 'ग' -- पात्र-परिकल्पना, परिवेश, शिल्प एवं भाषा-शैली जैसे आयामों के परिप्रेक्ष्य में साठोत्तरी उपन्यासों का विस्तृत अध्ययन। अन्तिम परिशिष्टों में पूरे शतक के हिन्दी उपन्यास, हिन्दी

अंग्रेजी, गुजराती के सन्दर्भ ग्रन्थ तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूचियां यथासम्भव आधुनिक एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत की गयी हैं।

खण्ड ` क ` को चार अध्यायों में निरूपित किया गया है। प्रथम अध्याय में उपन्यास के स्वरूप का विवेचन व्याख्यायित है। प्रारम्भ में उपन्यास की लोकप्रियता एवं विशेषता के निरूपण द्वारा विषय प्रवेश को उद्घाटित करके उपन्यास के नवीन रूपबन्ध पर सोदाहरण विचार-विमर्श हुआ है। उपन्यास की परिभाषा पर पर्याप्त लिखा जा चुका है। अत: प्रस्तुत अध्याय में मैंने उन सारी परिभाषाओं के नवनीतरूप उपन्यास के व्यावर्तक लक्षणों की खोज का नम्र प्रयास किया है। तत्व-विवेचन में कथावस्तु एवं कथानक तथा शैली एवं शिल्प के सम्बन्ध में कुछ प्रश्नों को उठाकर उनका यथाशक्तिमति समाधान करते हुए कथावस्तु, कथानक, या शिल्प, पात्र, कथोपकथन, देश-काल, जीवन-दृष्टि एवं शैली जैसे परम्परागत तत्वों पर नये ढंग से विचार किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में उपन्यास की रचना-प्रक्रिया पर भी नये सिरे से विचार हुआ है तथा उसे अनेक देशी विदेशी समीक्षक व औपन्यासिकों के प्रमाणों से पुष्ट किया गया है। ~~प्रस्तुत अध्याय में~~ साधारणत: हम काव्य-प्रयोजनों को प्राचीन सन्दर्भ एवं उदाहरणों द्वारा ही समझते रहे हैं, इस अध्याय में उन पर आधुनिकता और विशेषत: उपन्यास के सन्दर्भ में विचार-विमर्श किया गया है।

साहित्य की अभी तक की विधाओं में उपन्यास सर्वाधिक नि:-स्वरूप, जटिल एवं लचीला है। अत: उसके व्यावर्तक लक्षणों के समुचित आकलन के लिए उसकी अन्य कथाश्रित काव्यरूपों से तुलना करना अत्यावश्यक है। अत: इस अध्याय में उपन्यास की तुलना कहानी, नाटक एवं महाकाव्य से की गई है। डॉ० त्रिभुवन सिंह ने इस दिशा में कुछ कार्य अपने शोध-ग्रन्थ ` हिन्दी उपन्यास - शिल्प और प्रयोग ` में किया है। किन्तु मेरा अभिगम उनसे भिन्न है। प्रस्तुत अध्याय में उपन्यास की नाना प्रवृत्तियों का भी संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रमुख प्रवृत्तियों में -- आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रकृतवाद, अस्तित्ववाद प्रभृति चार मुख्य विचार-सरणियों का सम्यक् दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न रहा है। ~~अत: इस प्रथम खण्ड में~~ अध्याय के अन्त में निष्कर्ष स्वरूप ` साहित्यिक उपन्यास की पहचान ` शीर्षक के अन्तर्गत उच्च साहित्यिक स्तर के उपन्यासों की प्रमुख ~~विशे-~~

विशेषताओं का निरूपण कर, साहित्यिक एवं निम्न कोटि के उपन्यासों के बीच के अंतर को स्पष्टत: रेखांकित किया गया है। अध्याय के इस अंश की सामग्री सतृणाभ्यवहारी पाठकों के लिए विशेषत: उपादेय सिद्ध होगी। अत: इस अध्याय में उपन्यास के सिद्धान्त पक्षों -- उसके स्वरूपगठन एवं उसकी नाना प्रवृत्तियों को -- विवेचित करने का एक यथासम्भव व्यावहारिक व व्यवस्थित प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत खण्ड के द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में सन् १९६० तक के उपन्यासों की विकास-परम्परा को -- उसकी विकास-यात्रा के विभिन्न सोपानों को -- इस प्रकार उद्घाटित किया गया है कि हिन्दी उपन्यासगगन के देदिप्यमान नक्षत्रों की सुन्दर छटा का यत्किंचित एहसास उसके अध्येताओं को अनायास ही हो जाय।

द्वितीय अध्याय में प्रेमचन्दपूर्व हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है। प्रारम्भ में युगीन चेतना का संक्षिप्त ब्यौरा देकर हिन्दी के प्रथम उपन्यास से सम्बन्धित समस्या को उपस्थित किया गया है। लेखक के मतानुसार 'भाग्यवती' हिन्दी का प्रथम उपन्यास है क्योंकि उसका कथ्य आधुनिक सामाजिक सुधारवादी चेतना से अनुप्राणित है। वैसे अनूदित रचनाएं किसी भी भाषा की मूल सम्पति नहीं समझी जाती, तथापि इस अध्याय में अनूदित रचनाओं का उल्लेख किया गया है क्योंकि हिन्दी उपन्यास के भावी विकास में इन उपन्यासों का विशिष्ट योगदान रहा है। हिन्दी उपन्यास की मूल मिट्टी के परिचायक होने की वजह से उनका ऐतिहासिक महत्व है।

अनूदित उपन्यासों के उपरान्त इस अध्याय में सामाजिक, ऐतिहासिक तिलस्मी एवं ऐय्यारी, जासूसी आदि विभिन्न कोटियों के उपन्यासों की संक्षिप्त चर्चा की गई है। पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाकृष्णदास, मेहता लज्जाराम शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय, मन्नन द्विवेदी, गंगाप्रसाद गुप्त, जैरामदास गुप्त, बाबू देवकीनन्दन खत्री तथा गोपालराम गहमरी प्रभृति इस प्रारम्भिक काल के टिमटिमाते सितारे हैं। अध्याय के अन्त में निष्कर्ष रूप में कुछ तथ्य उद्घाटित किये गये हैं।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द का स्थान

मेरुदण्ड के समान है। उनका प्रभाव उनके समकालीनों पर ही नहीं प्रत्युत उनके परवर्ती उपन्यासकारों में भी परिलक्षित होता है। अत: इस दूसरे अध्याय में प्रेमचन्द एवं उनके युग को उसकी समूची विशेषताओं के साथ उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है। प्रेमचन्द पर विपुल मात्रा में लिखा गया है और आगे भी लिखा जायेगा। कविकुलगुरु कालिदास, साहित्यिक नीलकण्ठ तुलसी और आंग्ल नाट्यकार शेक्सपीयर के साहित्य का जितना भी अनुशीलन--परिशीलन होगा, जितना भी मन्थन होगा, रत्नरूप में मनुष्य जाति को कुछ न कुछ प्राप्त होगा ही। उसी प्रकार भारतीय कृषक की ~~कसक~~- कसक को करुणा से उभारनेवाले जनवादी प्रेमचन्द के साहित्य का जितना भी अवगाहन किया जायगा, कम होगा।

प्रारम्भ में हिन्दी साहित्य के कालक्रम में प्रेमचन्द युग' इस नामकरण के औचित्य पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् युगीन परिस्थितियों का निरूपण कर महात्मा गांधी और मुंशी प्रेमचन्द की विभिन्न स्तरों पर तुलना की गई है। इसी अध्याय में प्रेमचन्द के कृती व्यक्तित्व के विधायक तत्वों -- शैशवकालीन प्रभाव, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक संघर्ष, अध्ययन -- आदि का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचन्द के औपन्यासिक कृतित्व का --'सेवासदन' से 'गोदान' व 'मंगलसूत्र' तक की यात्रा का -- भी संक्षेप में निरूपण किया गया है। प्रेमचन्द की विशेषताओं का ही नहीं वरन् उनकी त्रुटियों का भी सम्यक् विवेचन इस अध्याय में निरूपित है। इस युग के अन्य उपन्यासकारों में पाण्डेय बेचैन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, ऋषभचरण जैन, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर प्रसाद, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, वृन्दावन लाल वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सियारामशरण गुप्त, गोविन्दवल्लभ पन्त, ~~उषा~~ उषा देवी मित्रा, शिवरानीदेवी, गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा आदि का भी संक्षेप में उल्लेख किया गया है। अन्तिम तीन लेखक तो इस काल में अपने प्रारम्भिक कृतित्व में ही थे। इस अध्याय में विद्वानों के विवेचनों की सहायता ली गई है किंतु लेखक ने उनके आधार पर तथा अपनी व्याख्याओं के आधार पर निजी निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास का जो चौमुखी विकास हुआ वह इस खण्ड के चतुर्थ अध्याय का विषय है। इसमें सन् १९६० तक के उपन्यासों को ही स्थान

दिया गया है क्योंकि साठोत्तरी उपन्यासों का विस्तृत अनुशीलन द्वितीय एवं तृतीय खण्ड में समाविष्ट किया जानेवाला है।

इस अध्याय में युगीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में प्रेमचन्दोत्तर काल की विभिन्न औपन्यासिक प्रवृत्तियों की -- सामाजिक, समाजवादी, ऐतिहासिक, आंचलिक, मनोवैज्ञानिक -- विवृत्ति दी गई है। इस काल में मनोवैज्ञानिक व आंचलिक उपन्यासों की विशिष्ट धाराएं पल्लवित एवं पुष्पित हुईं। यथार्थवादी उपन्यासों की दो स्पष्ट धाराएं यहां से पृथक् पृथक् विकसित होती हुई दृष्टिगोचर होती हैं -- सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास तथा मानसिक यथार्थवादी उपन्यास। उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, डॉ० रांगेय राघव, यशपाल, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु प्रभृति में सामाजिक यथार्थ की चेतना बलवती है तो दूसरी और जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, डॉ० देवराज, डॉ० रघुवंश आदि में मानसिक यथार्थ अपने कलागत मूल्यों को टोहता हुआ दिखता है। इस काल की औपन्यासिक उपलब्धियों में हम गिरती दीवारें', 'झूठा सच', 'बून्द और समुद्र', 'बलचनमा' 'सूरज का सातवां घोड़ा', 'मैला आंचल', 'बाणभट्ट की आत्मकथा, त्यागपत्र' शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' आदि उपन्यासों को परिगणित कर सकते हैं। प्रस्तुत अध्याय में इन उपन्यासों पर विस्तार से विचार किया गया है। इस अध्याय में उपन्यास के क्षेत्र में हुए शिल्पगत प्रयोगों की चर्चा भी की गई है। अध्याय के अन्त में लेखक के निजी निष्कर्ष निरूपित हैं।

प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड 'ख' में आलोच्य काल की लगभग ४८ विशिष्ट कृतियों का विस्तृत एवं समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। रचनाओं के चयन में आलोच्य काल के प्रमुख लेखकों की यथासम्भव प्रतिनिधि कृति औपन्यासिक कृतियों को लिया गया है जिसमें मान्यता एवं रुचिभेद के अवकाश की सीमा का लेखक स्वीकार करता है। इस खण्ड में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में (प्रबन्ध के पांचवे अध्याय में) केवल उन लेखकों की साठ के बाद की औपन्यासिक रचनाओं का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है जिनका औपन्यासिक कृतित्व प्रेमचन्द अथवा प्रेमचन्दोत्तर युग से (पर सन् साठ से पहले) प्रारम्भ हुआ है, पर जो अब भी प्रासंगिक नहीं बनी है और यथार्थ के नये आयामों को आधुनिक भावबोध के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। विवेच्य काल में विपुल औपन्यासिक साहित्य

लिखा गया है, क्योंकि यह विधा जहां उत्कृष्ट साहित्यिक स्तर की रचना देने के लिए दुष्कर है, वहां साधारण कोटि की रचना देना उसमें बड़ा सरल काम है। अतः लेखक ने केवल उन रचनाओं को लिया है जो वस्तु अथवा शिल्प की दृष्टि से रचनाधर्मिता की ऊंचाइयों को स्पर्श कर सकी हैं। एक ही लेखक की जहां अधिक कृतियां मिली हैं वहां दो या अधिक से अधिक तीन कृतियों को लिया गया है और शेष रचनाओं का परिचय उन उन कृतियों के अन्तर्गत ही देने का यथासम्भव प्रयत्न किया है।

इस खण्ड के दूसरे अर्थात् प्रबन्ध के छठे अध्याय में उन लेखकों की औपन्यासिक कृतियों को अध्ययनार्थ प्रस्तुत किया है जिनका लेखन शुद्ध रूप से साठ के बाद ही प्रारम्भ होता है। ऐसे लेखकों में सर्वश्री मोहन राकेश, कमलेश्वर (वैसे कमलेश्वर का औपन्यासिक कृतित्व साठ के पहले से शुरू हो गया था; परन्तु वे कृतियां ~~पुस्तकक~~ पुस्तकाकार में साठ के बाद ही आयी हैं, अतः हमने उनकी कृतियों को इसी अध्याय में लिया है।) , उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, शिवानी,
2 जगदम्बाप्रसाद दीक्षित , जगदीश चन्द्र, मणि मधुकर , श्रीलाल शुक्ल, डॉ० रामदरश मिश्र, डॉ० शिवप्रसादसिंह, डॉ० राही मासूम रज़ा, बदीउज़्ज़मां, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, राजकमल चौधरी, रमेश बक्षी, प्रभृति मुख्य हैं।

प्रबन्ध के तृतीय खण्ड 'ग' में कुछ पक्षों को लेकर साठोत्तरी उपन्यासों का विशिष्ट अध्ययन व्याख्यायित एवं विश्लेषित किया गया है। इस खण्ड में पांच अध्याय हैं -- (१) साठोत्तरी उपन्यास : पात्र-परिकल्पना, (२) साठोत्तरी उपन्यास : परिवेश , (३) साठोत्तरी उपन्यास : शिल्प के विभिन्न आयाम, (४) साठोत्तरी उपन्यास : भाषा-शैली, (५) उपसंहार। प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में पात्र-परिकल्पना व परिवेश को क्रमशः विश्लेषित किया गया है। पात्र-परिकल्पना में पात्र-निर्माण के विधायक तत्वों को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से देखा-परखा गया है। चरित्रांकन की विधियां, पात्रों का वर्गीकरण, उनकी मनःस्थितियां, प्रभृति ~~को~~ भी इस अध्याय में निरूपित हैं। 'परिवेश' में आलोच्य काल के उपन्यासों के परिवेश को विदेशी परिवेश, ऐतिहासिक परिवेश, राजनीतिक परिवेश, ग्रामीण परिवेश, नगरीय परिवेश आदि शीर्षकों के अन्तर्गत उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक व नैतिक आयामों को ~~विश्लेषित किया गया है।~~

इस प्रकार विश्लेषित किया गया है कि देश-कालगत स्थितियों को लक्ष्य करने के साथ ही साथ बदलते जीवन मूल्यों का संकेत भी पाठक को हो जाय।

तृतीय अध्याय में शिल्प के विभिन्न आयामों की चर्चा है। प्रस्तुत अध्याय में कथा-प्रस्तुति की विभिन्न पद्धतियाँ -- वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, डायरी पद्धति, चेतन प्रवाह शैली, प्रतीकात्मक शैली, फंतासात्मक कथा-शैली -- का सोदाहरण विश्लेषण सन्निहित है। शिल्प के इतर आयामों के अन्तर्गत अधोमुखी कथा-प्रवाह, पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक), शब्दसहस्मृति, अन्तर्विवाद, अन्तर्भ्रमणा, नाटकीयता का समावेश, समानान्तर कथा-प्रवाह, प्रासंगिक कथाओं का संयोजन, भाषा प्रभृति पर सोदाहरण विचार किया गया है। इधर के उपन्यासों में बृहत् की तुलना में लघु उपन्यास विपुलता से उपलब्ध होते हैं। अत: लघु-उपन्यास के रूपबन्ध पर भी इस अध्याय में विचार हुआ है जिसमें लेखक ने एतद्विषयक एक साहित्यिक संगोष्ठी का लाभ भी उठाया है।

चतुर्थ अध्याय में भाषा-शैली के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास हुआ है। प्रारम्भ में उपन्यास की वस्तु, चरित्र-सृष्टि, परिवेश आदि के निर्माण में भाषा के योगदान को प्रतिपादित किया गया है। शब्द-विचार के अन्तर्गत उपन्यासों में प्रयुक्त संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, बंगला, पंजाबी, मराठी, गुजराती प्रभृति भाषाओं के शब्दों को रेखांकित करते हुए उससे उत्पन्न भाषा-सौन्दर्य को लक्ष्य किया गया है, साथ ही उसके भयस्थानों का संकेत भी दे दिया है। नवीन भाषाभिव्यंजना के अन्तर्गत नये रूपक, नये उपमान, नये विशेषण, नवीन मुहावरे एवं कहावतों को उपन्यासों से अन्वेषित करने का प्रयास हुआ है। कहावत-मुहावरे, व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, सांकेतिकता, सूक्तियां प्रभृति भाषा के अन्य पक्षों पर भी इसमें विचार-विमर्श हुआ है।

अन्तिम अध्याय उपसंहार का है जिसमें औपन्यासिक क्षेत्र के इस एक शतकीय कान्तार की उपलब्धियों को संक्षेप में निरूपित करते हुए उसके कुछ प्राण-प्रश्नों की -- आधुनिक भावबोध, साहित्यिक निरपेक्षता आदि -- चर्चा साठोत्तरी उपन्यासों के विशिष्ट सन्दर्भ में की गई है। अध्याय के अन्त में उपन्यास साहित्य एवं उसके अध्ययन के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए इस विषय के अध्ययन की अन्य दिशाओं को संकेतित किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में उठायी गयी कतिपय बातें विस्तृत अध्ययन की दिशाओं को खोलने में तथा विपुल ज्ञानराशि के संचयन में किंचित् भी योग दे सकी और मेरा यह लघु प्रयास यदि अनुसन्धान की दिशा को एक कदम भी आगे बढ़ा पाया तथा सुधी आलोचकों, पाठकों व अनुसंधित्सुओं को इससे किंचित् भी योग मिला तो म लेखक स्वयं को कृतार्थ समझेगा।

इस अध्ययन की भी अपनी सीमाएं हैं। उपन्यासों के चयन में यथासम्भ व प्रतिनिधि रचनाओं का ध्यान रखा गया है। जिन-जिन प्रश्नों को उठाया गया है उनको यथासम्भव स्पष्ट करने का प्रयत्न रहा है। हिन्दी उपन्यासों की प्रथम प्रकाशन-तिथियों को निश्चित कर उनकी तालिका बनाने में अनेक असुविधाओं एवं संकटों से गुजरना पड़ा है क्योंकि कहीं कहीं एक ही उपन्यास की विभिन्न तिथियां भिन्न भिन्न विद्वानों द्वारा दी गई हैं। अनेक उपन्यासों में प्रकाशकों ने प्रथम संस्करण की तिथि देना अनिवार्य नहीं समझा है। ऐसी परिस्थिति में अनुसंधित्सु का कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है। विभिन्न ग्रन्थों, पत्रिकाओं, लेखकों तथा प्रकाशकों से इस दिशा में लेखक को उनके बहुमूल्य निर्देश प्राप्त हुए हैं, अतएव मैं उनका अतीव कृतज्ञ हूँ।

~~अबेब-~~ श्रद्धेय गुरुवर डॉ० मदनगोपाल गुप्त के निर्देशन में प्रस्तुत प्रबन्ध तैयार किया गया है। उनके बहुमूल्य निर्देशों के अभाव में यह कार्य मेरे लिए अत्यन्त दुष्कर होता। उन्होंने मुझे शोध-प्रणाली से परिचित कराकर समय-समय पर जो मूल्यवान निर्देश दिये उन्हीं के परिणामस्वरूप यह प्रबन्ध इस रूप में प्रस्तुत हो सका है। उनकी शिष्यवत्सलता, एवं अनुग्रह से मेरा जीवन-पथ हमेशा आलोकित होता रहा है। लाख कृतज्ञता ज्ञापित करने पर भी उनके ऋण से मैं उऋण नहीं हो सकता।

साधारणतया हमारा ध्यान किसी भी वस्तु के बाहरी आकार-प्रकार तक ही सीमित रहता है। उसकी बुनियाद एवं जड़ों तक पहुंचने का श्रम हम नहीं करते। मेरे साहित्यिक संस्कारों को बनाने में तथा विश्वविद्यालयीन शिक्षा को सुलभ कराने में जिन महानुभावों का योगदान रहा है उनमें मेरे प्राथमिक शिक्षा के गुरु स्व० डाह्याभाई फणीभाई वसावा, माध्यमिक शिक्षा के गुरु भागवत साहब तथा हमारे कस्बे के डाक्टर मोहनभाई पटेल एवं शनीभाई गांधी मुख्य हैं।

इस प्रसंग पर उनका विस्मरण मेरी अकृतज्ञता को प्रमाणित करता । उनके प्रति मैं अतीव कृतज्ञ हूं ।

गुजराती के आधुनिकों में अग्रणी ऐसे डॉ० सुरेश जोशी पिछले पन्द्रह वर्षों से मेरे मानस-गुरु रहे हैं । गुजराती के दैनिक पत्रों में प्रति सप्ताह प्रकाशित होनेवाले स्तम्भ ' मानवीना मन ' तथा ' नवा कलेवर ' ने मेरे साहित्यिक संस्कारों के गठन में विशेष योग दिया है । उनकी पुस्तकों से मैं सदैव प्रेरणा-पीयूष पीता रहा हूं । अत: उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूं ।

प्रस्तुत प्रबन्ध की अनेक समस्याओं को सुलझाने में आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुधी आलोचक एवं सरदार पटेल यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभागाध्यक्ष व प्रोफेसर डॉ० शिवकुमार मिश्र के बहुमूल्य परामर्शों से मुझे विशेष सहायता प्राप्त हुई है । अत: उनका मैं सदैव अनुगृहीत रहूंगा ।

हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी के जिन सन्दर्भ ग्रन्थों से मैंने सहायता ली है, उनके विद्वान् लेखकों के प्रति म कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम धर्म समझता हूं । मेरे परम मित्र डॉ० प्रतापनारायण झा, डॉ० आर०डी० पाठक, डॉ० के० एम० शाह, श्री अक्षयकुमार गोस्वामी तथा श्री जशवन्त व्यास के समय समय पर अपने बहुमूल्य सुझावों से मुझे प्रोत्साहित करते रहे हैं । उनके प्रति आभार प्रदर्शन केवल औपचारिकता होगी । पुस्तकों तथा लेखन-सामग्री की उपलब्धि के लिए मुझे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से दो हजार रूपयों की राशि अनुदान के रूप में प्राप्त हुई है । अत: जिस समिति ने मेरे नाम की ~~संस्तुल~~ संस्तुति की है, उसके सभी सदस्यों के प्रति मैं अत्यन्त ऋणी हूं । हंसा मेहता लायब्रेरी, म०स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा के प्रधान ग्रन्थपाल डॉ० पाध्ये ने मुझे विशेष सुविधाएं प्रदान की हैं, अत: उनका भी मैं हृदय से आभारी हूं ।

इस समूची कार्य-प्रक्रिया में मुझे सदैव मेरी स्व० पत्नी व प्रेयसी सुकीर्ति शाह (पारु) तथा वर्तमान धर्मपत्नी लीना चतुर्वेदी से प्रेरणा व सहयोग मिलता रहा है जिसके अभाव में मैं ऐसा दुस्साहस कदाचित् न कर सकता ।

प्रस्तुत प्रबन्ध प्रकारान्तर से मेरे ~~व्यक्तित्व-के~~ व्यक्तित्व के अन्तर्विरोध

को भी उजागर करता है। मेरे कृतित्व का रुझान सदैव कविता-कामिनी की ओर रहा है। जबकि निर्धारित पाठ्यक्रम की कुछ कविताएं और कतिपय उर्दू कवियों की शायरी के अतिरिक्त इस क्षेत्र में मैंने बहुत कम पढ़ा है। कहानी और कथा-लेखन में मेरी गति नहींवत् रही है। पर उपन्यास और कहानियों का पठन-पाठन शैशवकाल से अभी तक अनवरत चालू है।

हमारे यहां साहित्य के समीक्षक एवं भावक तथा कृती-साहित्यकार के बीच स्वामी, मित्र, मन्त्री, शिष्य, आचार्य प्रभृति अनेक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किये गये हैं १:

" स्वामी मित्रं च मन्त्री च शिष्य आचार्य एव च ,
कवेर्भवति हि चित्रं किं हि तद्यन्न भावकः । "

प्रस्तुत प्रबन्ध में कृतियों के अनुशीलन में जहां स्वामी एवं आचार्य के भाव उत्पन्न हुए हैं, वहां मैं अपने कृतित्व को नकारता हूँ क्योंकि वह मेरे पूज्य गुरुवर डॉ० मदनगोपाल गुप्त तथा अन्य अनेकानेक आचार्य विद्वानों की सारस्वत त्रिवेणी में अवगाहन का परिणाम है और जहां मित्र, मन्त्री एवं शिष्य की भावनाओं तथा जिज्ञासाओं का आकलन हुआ है, वहां मैं अपने अध्ययन को उसकी सारी सीमाओं के साथ नम्र भाव से स्वीकार करता हूँ।

: इत्यलम् :

-- पारुकान्त देसाई,
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग ,
म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा